

संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद और रसशास्त्र

प्रतीक माली*

सारांश

संस्कृत साहित्य भारतीय ज्ञान परंपरा का एक महत्वपूर्ण स्रोत है, जिसमें दर्शन, धर्म, साहित्य, चिकित्सा, गणित, खगोल, रसायन तथा अन्य वैज्ञानिक विषयों का समृद्ध ज्ञान सुरक्षित है। प्रस्तुत शोध-पत्र में संस्कृत साहित्य में निहित आयुर्वेद और रसशास्त्र की वैज्ञानिक परंपरा का अध्ययन किया गया है। आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा विज्ञान की प्राचीनतम और सर्वाधिक विकसित शाखा है, जिसका उद्देश्य मानव स्वास्थ्य की रक्षा तथा रोगों का उपचार करना है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि आचार्यों ने चिकित्सा विज्ञान को व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। इसी प्रकार रसशास्त्र ने रसायन विज्ञान एवं धातु विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। रसरत्नाकर, रसरत्न समुच्चय, रसेन्द्र चिंतामणि आदि ग्रंथों में प्रयोगशाला, यंत्रों, धातु-शोधन तथा रासायनिक प्रक्रियाओं का विस्तृत वर्णन मिलता है। नागार्जुन जैसे विद्वानों ने इस क्षेत्र को नई दिशा प्रदान की। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक परंपरा केवल सैद्धांतिक न होकर प्रयोगधर्मी एवं व्यावहारिक भी थी। संस्कृत साहित्य में संरक्षित यह ज्ञान आज भी मानव कल्याण तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के लिए प्रेरणास्रोत है।

कुंजीशब्द: संस्कृत साहित्य, भारतीय ज्ञान परंपरा, आयुर्वेद, रसशास्त्र, चरक, सुश्रुत, नागार्जुन, धातु विज्ञान, रसायन विज्ञान, पंचकर्म, भारतीय विज्ञान।

प्रस्तावना

भारत विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है, जिसकी सांस्कृतिक और बौद्धिक परंपरा

अत्यंत समृद्ध रही है। भारतीय ज्ञान परंपरा का मूल आधार संस्कृत भाषा और उसका विशाल

*शोधार्थी, हिंदी विभाग, कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़।

साहित्य है। वेद, उपनिषद, पुराण, स्मृतियाँ तथा विविध शास्त्रीय ग्रंथ केवल आध्यात्मिक और दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं हैं, बल्कि उनमें विज्ञान, चिकित्सा, गणित, खगोल, कृषि तथा प्रौद्योगिकी संबंधी ज्ञान भी समाहित है।

संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद और रसशास्त्र का विशेष स्थान है। आयुर्वेद मानव जीवन को स्वस्थ, संतुलित और दीर्घायु बनाने वाला चिकित्सा विज्ञान है, जबकि रसशास्त्र रसायन विज्ञान तथा धातु विज्ञान की उन्नत परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, नागार्जुन आदि विद्वानों ने इन क्षेत्रों में उल्लेखनीय योगदान देकर भारतीय विज्ञान को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया।

वर्तमान समय में जब विश्व प्राकृतिक चिकित्सा, समग्र स्वास्थ्य तथा पारंपरिक ज्ञान प्रणालियों की ओर पुनः आकर्षित हो रहा है, तब संस्कृत साहित्य में निहित आयुर्वेद और रसशास्त्र की वैज्ञानिक उपलब्धियों का अध्ययन और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य संस्कृत साहित्य में उपलब्ध आयुर्वेद एवं रसशास्त्र संबंधी ज्ञान-परंपरा का विश्लेषण करते हुए उसके वैज्ञानिक, सामाजिक और सांस्कृतिक महत्व को रेखांकित करना है।

भारत प्राचीन काल से ही उच्च संस्कृति, ज्ञान और आध्यात्मिक चेतना की भूमि के रूप में विश्वभर में प्रसिद्ध रहा है। किंतु यह तथ्य अपेक्षाकृत कम लोगों को ज्ञात है कि इसी भूमि

पर विज्ञान का भी उल्लेखनीय विकास हुआ था। इस अज्ञानता के पीछे अनेक कारण हो सकते हैं, जिनमें विदेशी आक्रमण, दीर्घकालीन विदेशी शासन तथा भारतीय ज्ञान-परंपरा की उपेक्षा प्रमुख हैं। कारण चाहे जो भी रहे हों, अपने पूर्वजों की उपलब्धियों और उनके वैज्ञानिक योगदान को समझना अत्यंत आवश्यक है। यह उक्ति-“भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा” अर्थात् भारत की प्रतिष्ठा के दो प्रमुख आधार संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति हैं- भारतीय सभ्यता के गौरव को अभिव्यक्त करती है। इसी संदर्भ में हमारे पूर्वजों द्वारा विश्व को प्रदान की गई वैज्ञानिक उपलब्धियों तथा संस्कृत साहित्य में निहित वैज्ञानिक ज्ञान-परंपरा का परिचय प्रस्तुत करना इस लेख का उद्देश्य है।

विश्व की प्राचीन सभ्यताओं में सिंधु घाटी सभ्यता का विशेष स्थान है। यह सभ्यता हजारों वर्ष पूर्व विकसित हुई थी और अपने समय में अत्यंत उन्नत मानी जाती थी। पुरातात्विक साक्ष्य बताते हैं कि उस काल में नगर-योजना का स्तर अत्यंत विकसित था। चौड़ी एवं सुव्यवस्थित सड़कें निर्मित की गई थीं। पकी हुई ईंटों से बने दो और तीन मंजिला भवन अस्तित्व में थे। अनाज के भंडारण हेतु विशाल कोठारों का निर्माण किया गया था तथा सार्वजनिक स्नानागारों की व्यवस्था भी थी। इन सभी निर्माण कार्यों के पीछे वैज्ञानिक ज्ञान और तकनीकी दक्षता का होना अनिवार्य था।

इसके अतिरिक्त हमारे पूर्वज तांबा, लोहा, सोना आदि धातुओं के उपयोग और धातु-विज्ञान में भी निपुण थे। इसका उत्कृष्ट उदाहरण दिल्ली स्थित लौह स्तंभ है, जो लगभग पंद्रह सौ वर्षों से वर्षा, धूप और वायु के प्रभावों को सहते हुए आज भी बिना जंग लगे खड़ा है। इसी प्रकार जगन्नाथ मंदिर के द्वार तथा लोहे की पट्टिकाओं पर उत्कीर्ण अनेक अभिलेख भी भारतीयों की धातु-विज्ञान संबंधी उन्नत समझ के प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि प्राचीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी का विकास अत्यंत उच्च स्तर पर हुआ था तथा संस्कृत साहित्य में उसकी समृद्ध परंपरा सुरक्षित रूप से संरक्षित है।

आयुर्वेद

“आयुः विन्दति वेति इति आयुर्वेदः” अर्थात् जो शास्त्र मनुष्य को आयु का ज्ञान प्रदान करता है तथा स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन जीने की विधि बताता है, उसे आयुर्वेद कहा जाता है। भारत की पारंपरिक चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद के नाम से विश्वभर में प्रसिद्ध है। रोगों के उपचार और स्वास्थ्य संरक्षण में इसकी पंचकर्म चिकित्सा पद्धति आज विश्व के अनेक देशों में अपनाई जा रही है। आयुर्वेद में औषधियों का निर्माण मुख्यतः प्राकृतिक पदार्थों से किया जाता है। इसलिए यह माना जाता है कि इन औषधियों के सेवन से शरीर पर दुष्प्रभाव अपेक्षाकृत कम पड़ते हैं।

भारत में यह चिकित्सा पद्धति प्राचीन काल से परंपरागत रूप से चली आ रही है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में जिन विभिन्न शाखाओं का उल्लेख मिलता है, उनके अनेक आधारभूत तत्व आयुर्वेद में विद्यमान हैं। आयुर्वेद का विकास मुख्यतः तीन परंपराओं-आत्रेय परंपरा, धन्वंतरि परंपरा तथा काश्यप परंपरा-के माध्यम से हुआ है।

जब भारत में बौद्ध धर्म अपने उत्कर्ष पर था, तब आयुर्वेद को विशेष महत्व प्राप्त हुआ। उल्लेख मिलता है कि प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु नागार्जुन ने आयुर्वेद के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इतिहास से ज्ञात होता है कि उस समय के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों नालंदा विश्वविद्यालय तथा तक्षशिला विश्वविद्यालय में भारतीय विद्यार्थियों के साथ-साथ विदेशी छात्रों को भी आयुर्वेद की शिक्षा दी जाती थी।

पुरातात्विक साक्ष्यों से यह भी ज्ञात हुआ है कि प्राचीन भारत में शल्य चिकित्सा का उच्च स्तर विकसित था। एक प्राचीन अवशेष से पता चलता है कि क्षतिग्रस्त मानव नाक के स्थान पर नई संरचना स्थापित की गई थी। इसे आधुनिक युग की उन्नत प्लास्टिक सर्जरी (Plastic Surgery) की प्रारंभिक मिसाल माना जाता है। आयुर्वेद का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इसके अंतर्गत आठ प्रमुख शाखाएँ मानी गई हैं, जिन्हें अष्टांग आयुर्वेद कहा जाता है। ये हैं-कायचिकित्सा, शल्यतंत्र, शालाक्यतंत्र, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायनतंत्र तथा वाजीकरणतंत्र।

आयुर्वेद में प्राकृतिक स्रोतों से औषधियों का निर्माण किया जाता है तथा स्वास्थ्य संरक्षण के लिए अनेक उपचार पद्धतियाँ विकसित की गई हैं। इनमें वमन, विरेचन, बस्ति, स्नेहन तथा नस्य प्रमुख हैं, जिन्हें सामूहिक रूप से पंचकर्म चिकित्सा कहा जाता है। वर्तमान समय में पंचकर्म चिकित्सा विश्वभर में लोकप्रिय हो रही है, जो आयुर्वेद की वैज्ञानिकता, उपयोगिता और वैश्विक स्वीकार्यता का प्रमाण है।

इस क्षेत्र में चरक और सुश्रुत का विशेष योगदान माना जाता है। सुश्रुतद्वारा रचित सुश्रुतसंहिता, चरकाचार्य की चरक संहिता, वाग्भट द्वारा रचित अष्टांगहृदयम्, माधवकर की माधव निदान तथा शारंगधर की शारंगधर संहिता आयुर्वेद के प्रमुख एवं प्रामाणिक ग्रंथ माने जाते हैं।

वर्तमान समय में आयुर्वेद की लोकप्रियता निरंतर बढ़ रही है। जनसामान्य इसके लाभों का उपयोग कर स्वस्थ एवं दीर्घायु जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आयुर्वेद का मूल उद्देश्य केवल रोगों का उपचार करना ही नहीं, बल्कि स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना और उसे शतायु बनाना भी है।

इस शास्त्र का आदर्श है कि प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक रोगों से मुक्त होकर स्वस्थ जीवन व्यतीत करे। इसी भावना को संस्कृत के प्रसिद्ध वचन “शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्” में व्यक्त किया गया है, जिसका

अर्थ है कि शरीर ही सभी कर्तव्यों और धर्माचरण का प्रमुख साधन है। अतः शरीर को स्वस्थ रखना प्रत्येक व्यक्ति का प्रथम दायित्व है। यही आयुर्वेद का मूल संदेश और उद्देश्य है।

रसशास्त्र

प्राचीन भारत में रसायन विज्ञान और धातु विज्ञान का पर्याप्त विकास हुआ था। पुरातात्विक उत्खननों से प्राप्त आभूषणों, धातु निर्मित वस्तुओं तथा अन्य अवशेषों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय के लोगों को विभिन्न धातुओं और उनके गुणों का अच्छा ज्ञान था। स्वर्ण, रजत, ताम्र, लोहा आदि धातुओं से निर्मित आभूषणों और उपकरणों का निर्माण उस युग में व्यापक रूप से किया जाता था। इससे यह सिद्ध होता है कि तत्कालीन समाज धातुओं के गुणों, उनके उपयोग तथा निर्माण प्रक्रियाओं से भली-भाँति परिचित था।

धातुओं का यह ज्ञान अत्यंत प्राचीन है। वैदिक साहित्य में भी धातुओं का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद तथा शुक्ल यजुर्वेद की वाजसनेयी संहिता में ताम्र, लोहा, सीसा और स्वर्ण आदि धातुओं का वर्णन मिलता है। इन ग्रंथों में प्रयुक्त श्याम, हिरण्य, लोह और सीस जैसे शब्द विभिन्न धातुओं की ओर संकेत करते हैं।

उल्लेखनीय है कि प्रत्येक धातु के भौतिक और रासायनिक गुण अलग-अलग होते हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानों को इन विशेषताओं का ज्ञान था तथा वे खनिजों से धातुओं को पृथक करने की

विभिन्न विधियों से भी परिचित थे। अथर्ववेद में भी विभिन्न धातुओं का उल्लेख मिलता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय धातु-विज्ञान का पर्याप्त विकास हो चुका था।

केवल धातुओं का ही नहीं, बल्कि मिश्रधातुओं (Alloys) के निर्माण और उपयोग का ज्ञान भी प्राचीन भारतीयों को था। धातुओं के परिशोधन, गलाने, ढालने तथा उनसे उपयोगी वस्तुओं के निर्माण में उनकी दक्षता उनके वैज्ञानिक कौशल का परिचायक है। वस्त्रों को रंगने और उनमें विविध रंगों का संयोजन करने के लिए भी वे विभिन्न रासायनिक पदार्थों का उपयोग करते थे। यह तथ्य दर्शाता है कि प्राचीन भारत में रसायन विज्ञान का व्यावहारिक और वैज्ञानिक स्वरूप विकसित था तथा उसका उपयोग दैनिक जीवन, उद्योग और कला-कौशल में व्यापक रूप से किया जाता था।

रसशास्त्र में वैज्ञानिक प्रयोगों की परंपरा

प्राचीन भारतीय विद्वान वैज्ञानिक अनुसंधान में प्रयोगों के महत्व को भली-भाँति समझते थे। रसरत्नाकर, रसरत्न समुच्चय, रसेन्द्र चिंतामणि आदि ग्रंथों में वैज्ञानिक प्रयोगों तथा प्रयोगशालाओं का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। विशेष रूप से रसरत्न समुच्चय में प्रयोगशाला की स्थापना, उसकी संरचना, वातावरण तथा उसके आसपास उगाए जाने वाले पौधों आदि के संबंध में विस्तृत निर्देश दिए गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधान

के लिए व्यवस्थित प्रयोगशालाओं की आवश्यकता को समझते थे।

प्राचीन काल से ही पूर्वी और पश्चिमी देशों में धातुओं के रूपांतरण तथा उनके गुणों के अध्ययन पर विचार किया जाता रहा है। सातवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य रचित अनेक तांत्रिक ग्रंथों में धातु-शोधन, धातु-मारण तथा विशेष रूप से पारे (पारद) के गुणों और उपयोगों का वर्णन मिलता है। इन ग्रंथों में विभिन्न रासायनिक क्रियाओं तथा उनसे उत्पन्न होने वाले परिवर्तनों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

भारतीय रसशास्त्र में नागार्जुन का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है। इतिहासकारों के अनुसार उनका काल लगभग दूसरी शताब्दी ईस्वी माना जाता है। उनके प्रमुख ग्रंथों में कक्षपुट तंत्र, रसरत्नाकर तथा आरोग्यमंजरी उल्लेखनीय हैं। रसरत्नाकर में 32 प्रकार के यंत्रों का वर्णन मिलता है। यहाँ “यंत्र” शब्द का प्रयोग वैज्ञानिक और प्रायोगिक उपकरणों के अर्थ में किया गया है।

इन यंत्रों में डोलायंत्र, स्वेदन यंत्र, पातन यंत्र (Distillation Apparatus), अर्धपातन यंत्र (Sublimation Apparatus), सैंड बाथ (Sand Bath) तथा सॉल्ट बाथ (Salt Bath) आदि का उल्लेख मिलता है। इनका प्रयोग विभिन्न रासायनिक प्रक्रियाओं और धातु-शोधन कार्यों में किया जाता था।

नागार्जुन के पश्चात इस क्षेत्र में वैज्ञानिकों की संख्या अपेक्षाकृत कम रही, फिर भी अनेक विद्वानों के योगदान से रसशास्त्र का विकास निरंतर होता रहा। तेरहवीं शताब्दी के ग्रंथ रसेंद्र चूड़ामणि में वर्णित है कि लोहे को स्टीबनाइट नामक खनिज के साथ गर्म करने पर सौवीर (एंटीमनी- Sb) प्राप्त होता है। यूरोप में इसी प्रक्रिया का वर्णन वैज्ञानिक बेसिल वैलेंटाइन ने सन् 1604 ईस्वी में किया था। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय विद्वान इस ज्ञान से यूरोप के वैज्ञानिकों से कई शताब्दियों पहले परिचित थे।

अठारहवीं शताब्दी में रचित रसायन एवं धातुवाद जैसे ग्रंथ तिब्बत के माध्यम से चीन पहुँचे और उनका चीनी भाषा में अनुवाद भी किया गया। यह तथ्य भारतीय रसशास्त्र की व्यापकता, वैज्ञानिक महत्ता और अंतरराष्ट्रीय प्रभाव को प्रमाणित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में रसायन विज्ञान और धातु विज्ञान का अध्ययन अत्यंत उन्नत स्तर पर विकसित था तथा उसका प्रभाव अन्य देशों तक भी पहुँचा था।

चरक तथा सुश्रुत ने स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह, सीस तथा सौवीर (एंटीमनी) आदि धातुओं को महत्वपूर्ण भौतिक पदार्थों के रूप में स्वीकार किया है। इससे स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय विद्वानों को धातुओं के स्वरूप, गुणों तथा उनके उपयोग का पर्याप्त ज्ञान था। धातुओं के संबंध में प्राचीन भारतीयों की वैज्ञानिक समझ अत्यंत विकसित थी। वे विभिन्न खनिज पदार्थों

का उपयोग करना जानते थे तथा धातुओं के परिशोधन, शोधन एवं संस्कार की उन्नत विधियों से परिचित थे। उन्होंने धातुओं को अयस्कों (खनिजों) से पृथक करने की अनेक तकनीकों का विकास किया था। इसके अतिरिक्त वे दैनिक जीवन में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न रासायनिक पदार्थों के निर्माण और संश्लेषण में भी दक्ष थे।

प्राचीन भारतीय वैज्ञानिकों ने धातुओं और मिश्रधातुओं (Alloys) के निर्माण, उनके गुणों तथा उपयोगों के संबंध में उल्लेखनीय ज्ञान का परिचय दिया। विभिन्न धातुओं को मिलाकर नई मिश्रधातुओं का निर्माण करना, उनके गुणों का परीक्षण करना तथा उन्हें व्यावहारिक उपयोग के लिए तैयार करना उनकी वैज्ञानिक प्रतिभा का प्रमाण है।

खनिजों से धातुओं को पृथक करने की तकनीक, धातु-परिशोधन की प्रक्रियाएँ, रासायनिक पदार्थों का निर्माण तथा धातुओं एवं मिश्रधातुओं के संबंध में प्रदर्शित उनकी सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि प्राचीन भारतीयों को विश्व के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों की श्रेणी में स्थापित करती है। यह समस्त ज्ञान भारतीय विज्ञान-परंपरा की समृद्धि और उसकी उच्च वैज्ञानिक उपलब्धियों का परिचायक है।

उपसंहार

संस्कृत साहित्य भारतीय ज्ञान-विज्ञान की अमूल्य धरोहर है। आयुर्वेद और रसशास्त्र इसके ऐसे दो महत्वपूर्ण आयाम हैं, जिन्होंने मानव

स्वास्थ्य, चिकित्सा, रसायन विज्ञान तथा धातु विज्ञान के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट तथा नागार्जुन जैसे विद्वानों के ग्रंथों में निहित ज्ञान प्राचीन भारत की वैज्ञानिक दृष्टि, प्रयोगशीलता और अनुसंधान परंपरा का प्रमाण प्रस्तुत करता है। आयुर्वेद ने मानव स्वास्थ्य की समग्र अवधारणा प्रस्तुत करते हुए रोग-निवारण और स्वास्थ्य संरक्षण दोनों को समान महत्व दिया है। वहीं रसशास्त्र ने धातुओं, खनिजों और रासायनिक प्रक्रियाओं के अध्ययन द्वारा विज्ञान के क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त कीं। संस्कृत ग्रंथों में वर्णित प्रयोगशालाएँ, यंत्र तथा धातु-शोधन की प्रक्रियाएँ प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक चेतना की उन्नत अवस्था को दर्शाती हैं।

अतः यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में निहित आयुर्वेद और रसशास्त्र केवल

ऐतिहासिक महत्व के विषय नहीं हैं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के वैज्ञानिक अनुसंधान, स्वास्थ्य विज्ञान तथा भारतीय ज्ञान परंपरा के पुनरुत्थान के लिए भी अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनका सम्यक् अध्ययन भारतीय वैज्ञानिक विरासत के संरक्षण और वैश्विक स्तर पर उसके पुनर्प्रतिष्ठापन में सहायक सिद्ध होगा।

संदर्भ सूची

1. सिंह, भगवान. भारतीय विज्ञान की परंपरा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. काणे, पी. वी. धर्मशास्त्र का इतिहास (हिंदी अनुवाद), उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ।
3. आयुर्वेद का इतिहास-डॉ. प्रियव्रत शर्मा।
4. भारतीय ज्ञान परंपरा-उच्च शिक्षा एवं IKS संदर्भ ग्रंथ।